पंचम अध्याय

"समकालीन उपन्यासों में अलका सरावगी का योगदान"

पंचम अध्याय

''समकालीन उपन्यासों में अलका सरावगी का योगदान''

प्रस्तावना :-

अनादिकाल से नारी साहित्य का केंद्र रही है। अत: साहित्य और नारी का संबंध शाश्वत है। साहित्य में मानवीय संवेदनाएँ प्रभावपूर्ण ढंग से अभिव्यक्ति पाती है। उपन्यास साहित्य अपने उद्‌भव काल से ही नारी को उसके सहजरूप में चित्रित करता रहा है।

बीसवीं शताब्दी संभवत: मानव इतिहास की सर्वाधिक अराजकतापूर्ण शती है। मानवीय कल्याण की व्यापक परिधि में हिंदी का साहित्यकार अपने राष्ट्रीय परिवेश को निरपेक्ष दृष्टि से नहीं देख सका, उसका व्यक्तित्व राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय दोनों भूमिकाओं को अपने भीतर समेट लेना चाहता था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद प्रजातंत्र के होते हुए भी देश में व्याप्त सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक विषमताएँ समाप्त न हो सकी। देश को राजनीतिक स्वतंत्रता तो बहुत बाद में मिली, पर हिंदी का साहित्यकार उससे डेढ-दो दशक पहले ही छायावाद युग में अपनी मानसिक मुक्ति की घोषणा कर चुका था।

साठोत्तर काल के उपन्यासों में संवेदना और शैली की दृष्टि से 'वे दिन' में निर्मल वर्मा ने नये प्रतिमान अर्थात नई लकीर खींचकर इसकी विकास-यात्रा में नया मोड प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास के बारे में यह कहा जाता है कि इसमें उपन्यास की गरिमा नहीं है, कथानक नहीं है, बिखराव है, उद्‌देश्य का अभाव है। किंतु वास्तव में उपन्यास के पुराने ढाँचे को तोडता है तथा अंत को अंतहीन बनाता है।

समकालीन हिंदी उपन्यास अपने मुहावरे खोज रहा है तथा अपनी विकास की दिशा की तलाश में है। आज जीवन जीने और भोगने के बजाय समझने और समझाने का विषय बनता जा रहा है और अनुभूति का स्थान उत्तरोत्तर बौद्धिकता ने ले लिया है।

साठोत्तर हिंदी उपन्यासकार ने मुख्यत: अभाव और संघर्षों के बीच से गुजरती हुई जिंदगी की नब्ज पकडने की चेष्टा करते हुए अपनी पहचान बनाई है। उन्होंने अपनी रचनाओं में नया शिल्प, नई संवेदनशीलता, युग-बोध, नई धारणाओं को उभारकर हिंदी उपन्यास-साहित्य को नया मोड दिया है। उपन्यासकार की दृष्टि चाहे जैसी हो, वह समाज की उपेक्षा नहीं कर पाता। जब एक

उपन्यासकार अपनी रचना में समाज की समस्याओं का राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक संदर्भों में देखने का प्रयास करता है और नवीन परिवेश में मानव-मूल्य एवं व्यक्ति के आचारण की मर्यादा स्थापित करने का प्रयत्न करता है, तब वह सामाजिक चेतना का ही चित्रण करता है।

साठ के दशक से भारतीय नारी में नई चेतना और नये व्यक्तित्व के विकास का आयाम हो रहा है। जिसका परिणाम उनका रचित कथा-साहित्य है। साठोत्तरी हिंदी उपन्यासों में जीवन के प्रति अत्यंत गहन चिंतन प्रस्तुत किया गया है। विकास के क्रम में साठोत्तर हिंदी उपन्यसों की विशिष्टता पृथक रूप से पहचानी जा सकती है, उसका सर्वाधिक प्रभावी स्वरूप उसकी प्रयोगात्मकता है।

5.1 महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में वैचारिकता :-

5.1.1 सामाजिक विचार :-

हिंदी उपन्यासों में महिला उपन्यासकारों ने 'समाज' को प्रमुखता दी है। इसमें मंजुल भगत, कृष्णा सोबती, शिवानी, शशिप्रभा, मृदुला गर्ग आदि अनेक महिला लेखिकाएँ है। इन लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों में सामाजिक विचारों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। इनके उपन्यास अधिकांशत: समाज से जुडे है। आज मनुष्य और समाज एक दूसरे से संपृक्त है। समाज के बिना मनुष्य का जीवन अधूरा है। मनुष्य समाज से इतना जुडा हुआ होता है कि वह समाज से ही ज्ञान ग्रहण करता है और समाज को ही ज्ञान देता है।

समाज और मनुष्य का नाता अटूट है। 'मनुष्य और समाज एक ही सिक्के के दो पहलू है' ऐसा अरस्तू का कहना है। मनुष्य स्वतंत्र जन्म लेता है लेकिन उसे समाज के नियमों में बँधना पडता है या बंध जाता है। मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के कारण उसे समाज के नियमों-प्रतिनियमों का पालन करना पडता है। तभी वह समाज के साथ गहरा संबंध स्थापित कर सकता है। सामाजिक परंपराओं को उसे सभी मान्यताओं के साथ स्वीकार करना होता है। जब वह नकारता है तो समाज में उसे स्थान नहीं मिलता। उसे बेदखल किया जाता है। इन मान्यताओं और परंपराओं से विलग मनुष्य का कोई अस्तित्व ही नहीं रहता है। शशिप्रभा शास्त्री लिखित ''नार्वे'' में अविवाहित मालती के गर्भवती हो जाने पर उसकी माँ उसे उसी अवस्था में घर से निकाल देती है, क्योंकि उसे समाज का भय है, उसे समाज की परम्पराओं से जुडे रहना है, उससे कटकर नहीं रहना है, समाज की सीमा रेखाओं को नहीं तोडना है।

समाज व्यक्ति के लिए है, व्यक्ति से श्रेष्ठ है। समाज स्वयं कायदे-कानून, नियम-निर्देश, रीति-नीति आदि पर अवलंबित है। तथा समाज में रहनेवाले लोगों को व्यक्ति को प्रेम जैसी कोमल भावनाओं को व्यक्त करने की छूट नहीं है, अन्यथा समाज का नैतिक पतन निश्चित है। यह समाज में जो नियम बनाए है, व्यवस्था बनायी गयी है उसे तोडना आसान नहीं है। मनुष्य को अपना अस्तित्व समाज में बनाए रखना है तो इन नियमों और व्यवस्था का पालन करना पडेगा। कुल मिलाकर हम कह सकते है कि मनुष्य को अपना अस्तित्व बनाए रखना है तो उसे इस सबका स्वीकार करना पडेगा। इनके नियमों के विरूद्ध में जाने वाला व्यक्ति अपराधी होता है। यह निरूपमा सेवती ने अपने उपन्यास 'दहकन के पार' में चित्रित किया है। माँ अपनी पुत्री को समझा रही है कि अलग जाति से विवाह करना पाप है समाज के नियामों का उल्लंघन करना है। पिता के सख्त स्वभाव को वह उसके सामने रखकर इस फैसले को बदलना चाहती है।

इस प्रकार समाज के भय से परिवार के सदस्य स्वजनों का त्याग कर पुत्री के प्रति माँ विशाल हृदया है, किंतु समाज के डर से वह उसे स्वीकार करने में हिचकती है।

हम समाज की मान्यताओं-नीतियों को अस्वीकार नहीं कर सकते। हम जानते हैं कि समाज की नजरों में जो काम बुरा है, उस वक्त समाज हमें सम्मान नहीं देगा। इन सब कर्मों से हमें खुशी जरूर मिलेगी लेकिन एक दिन ऐसा आता है कि हमें समाज की जरूरत होती है, क्योंकि उससे अलग हमारा अस्तित्व नगण्य है। इस संदर्भ में लेखिका शिवानी के विचार दृष्टव्य है- ''समाज मनुष्य को अपनी सीमा रेखाओं में कैद कर रखना चाहता है और मनुष्य है कि वह उन सीमाओं में नहीं रहना चाहता। किसी तरह वह सीमा के बाहर पैर रखता है तो स्वत: ही उसके बढते कदम डगमगाने लगते है। समाज का आवश्यक अंग होने के कारण मनुष्य समाज से पृथक् नहीं है।''[1] शशि प्रभा शास्त्री ने इसी संदर्भ में कथा नायिका के शब्दों में व्यक्त किए है।

सामाजिक मान्यता प्राप्त करने के लिए मनुष्य को समाज की रूढ मान्यताओं का, मूल्यहीन संस्कारों का, शिष्टाचारों का, नैतिक आदर्शों का पालन करना पडता है। चाहे वे कितने भी मलनशील क्यों न हो, समाज मानव चरित्र का निर्माण है, अत: व्यक्ति अपने चरित्र में साफ-साफ बने रहना चाहता हैं। समाज में उसे सम्मान भी चाहिए। डॉ. शशि जैकब का कहना है कि, ''समाज की

---

1. **डॉ. शशि जैकब - महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में वैचारिकता से उद्धृत, पृ. 20**

फैक्टरी से ही मनुष्य का चरित्र बनकर सँवरता है।''[1] ''दहकन के पार'' उपन्यास में लेखिका ने बताया है कि समस्याओं से मुक्ति पानी है तो समाज के साथ चलो। निरूपमा सेवती का कहना है कि समाज में स्थित धर्मवर्ग जाति की बात ने मनुष्य को इसमें जकडे रखा है। और कैद से बाहर भी नहीं आना चाहता। मनुष्य अपना धर्म, सामाजिकता छोडने के नाम से ही डर जाता है और मौत जैसी घबराहट उसे महसूस होती है। मानव संबंधों के साथ समाज हमेशा जुडा रहता है। 'निरूपमा सेवती' ने अपनी कृति 'दहकन के पार' में असलम के मुख से कहलाया है। असलम कहता है कि जब सोसायटी से कटकर रहोगे तो बहुत मुश्किले आएगी। तुम समाज के नियमों से अलग हो जाओगे।

सामाजिक जीवन में मनुष्य को कई बार कठिनाइयों को भोगना पडेगा। अत: यह भी आवश्यक है कि जब वह किसी कार्य को पूर्ण करने में जुट जाता है। तब वह अन्याय को नहीं सह सकेगा।

मानव का जन्म दुर्लभ होता है। मानव ईश्वर का वरदान है। मनुष्य को जन्म देने वाला एक मात्र ईश्वर ही है। लेकिन इस जीवन में आकर मनुष्य को विशेष कार्य करना ही उसे श्रेष्ठ की चोटी पर पहुँचाता है। आज का वातावरण क्रमश: परिवर्तनशील होता जा रहा है। आज पाश्चात्य सभ्यता की दौड में तो आगे जा ही रहा है, साथ ही स्वत: उसका परिवेश कई अर्थों में बदल रहा है। स्वाभाविक ही है कि बदलते परिवेश ने उसे प्रेरित किया और वह भी अपने को बदलने को संकल्पित हो बैठा।

सामाजिक विकास के संदर्भ में वातावरण का व्यक्ति के व्यक्तित्व पर इतना प्रभाव पडता है कि वह स्वत: अपने अस्तित्व की सार्थकता नहीं प्राप्त कर पा रहा है। मनुष्य का व्यवहार, उसका रहन-सहन बदलता-सा नजर आ रहा है। वातावरण एवं स्थिति के अनुसार मनुष्य अपने आपको बदलता है। प्रतिकूल परिस्थितियों में वह रहने की कोशिश करता है, लेकिन कुछ समय बाद उसे वह ढालकर अनुकूल हो जाता है। प्रस्तुत संदर्भ में मंजुल भगत का उपन्यास 'तिरछी बौछार' देखा जा सकता है। इसमें लेखिका ने यह बतलाने का प्रयत्न किया है कि परिवेश स्त्री-पुरूष के संबंधों को बनाने बिगाडने के लिए किस हद तक उत्तरदायी होता है।

---

1. **डॉ. शशि जैकब - महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में वैचारिकता से उद्धृत, पृ.20**

महिला उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में पात्रों के द्वारा समाज को बदलने की बात कहीं है। वे अपने पात्रों से समाज का परिवर्तन हर संभव में चाहती है। 'क्योंकि' उपन्यास की लेखिका शशिप्रभा तायल के माध्यम से इसका संकेत देती है।

5.1.2 राजनीतिक विचार :-

आज के हिंदी उपन्यासों में राजनीतिक परिस्थितियों का प्रभाव स्पष्टत: से दिखाई देता है। यह स्वाभाविक प्रक्रिया भी है।

स्वातंत्र्य पूर्व भारत की राजनीति में दो विचारधाराएँ कार्यरत थी। प्रथम थी गांधी की गतिशील राष्ट्रीयता, द्वितीय थी नेहरू की काल्पनिक राष्ट्रीयता। नेहरू की राष्ट्रीयता के फलस्वरूप देश में संशय, दुविधा और निष्क्रियता बढ़ी।

भारत की राजनीतिक चेतना के विकास में गांधी का योगदान असंदिग्ध है। उपन्यास लेखिकाओं ने एतद्संबंधी स्वीकारात्मक विचार भी व्यक्त किया है। मन्नू भंडारी ने 'महाभोज' के गांधीवादी पात्र का चित्रण प्रस्तुत कर उसके मुँह से कहलाया है।

किसी भी राजनीतिक सिद्धांत का प्रणेता मानवता का विरोधी नहीं होता। किंतु उसकी कार्य पद्धति ही उसकी प्राप्ति का मार्ग निर्धारित करती है। मानव कल्याण राजनीति की आधार शीला है। 'मैला आँचल' में मानवतावाद की जो ल्पना प्रेम और अहिंसा से करने की बात कहीं गई है, वह विशुद्ध गांधीवादी भावना ही है।

भारतीय राजनीतिक को जिन प्रमुख राजनीतिक विचारधाराओं ने प्रभावित किया है, उनमें साम्यवाद का स्थान महत्त्वपूर्ण है। इसे मार्क्सवाद भी कहा जाता है। साम्यवाद शोषित वर्ग सर्वहारा के प्रति सहानुभूति रखता है। जबकि शोषण करनेवाले पूंजीपतियों के प्रति आक्रोश। इस संदर्भ में मन्नू भंडारी ने अपने 'महाभोज' में अपने साम्यवादी या समाजवादी विचार स्थान पर व्यक्त किए है।

राजनैतिक दल अपने-अपने रूप में कार्य करते रहे है। स्वतंत्रता के पूर्व 'जनसंघ' का बोलबाला था। छठवे दशक के मध्य जनसंघ भारतीय राजनीति में हावी था। किंतु धीरे-धीरे इसकी अपनी शक्ति क्षीण होती गई । इसका रूप बदलता गया। महिला उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में वर्णित किया है कि मुस्लिम लीग, जनसंघ, साम्यवाद आदि राजनीतिक पार्टियों से समाज को व्या

मिला ? भारत विभाजन की स्थिति और मुस्लिम लीग के बारे में लेखिका निरूपमा सेवती ने 'दहकन के पार' उपन्यास में उद्धृत किया है।

स्वतंत्रता के इन साठ वर्षों में गरीबी और भूख के क्षेत्र में जितनी उन्नति हुई है, उतनी अन्य क्षेत्रों में नहीं हुई। जिस गरीबी और भूख से छुटकारा पाने के लिए स्वराज्य की मांग की गई थी, वह पूरी नहीं हुई। देश की इस हालत के जिम्मेदारी उत्तरदायी नेता है। जिन्होंने अंग्रेजों से सत्ता हासिल करने के लिए देश के टुकडे कर दिए। आज राष्ट्र हित की दृष्टि से कोई नेता नहीं सोचता न कार्यकर्ता। निरूपमा सेवती के 'दहकन के पार' इस उपन्यास में तुषार के द्वारा प्रस्तुत किया है। यह उदाहरण देखने लायक है।

स्वतंत्रता पूर्व व्यक्ति के मन में यह बात थी कि भारतीयों को स्वतंत्रता संग्राम एक साथ होकर लडना है। उसे ऐसा विश्वास था कि आजादी मिलने के बाद हर नवयुवक कों नौकरी मिलेगी, सस्ते मूल्यों में वस्तूएँ मिलेंगी, हर समस्या दूर होगी, हमारे हर कष्टों को दूर करने की जिम्मेदारी सरकार पर होगी, आदि इस झूठ को बढावा देने की गति काँग्रेस पार्टी ने की। स्वतंत्रता के पश्चात काँग्रेस के हाथों कुंठित होना पड रहा था। इस कारण काँग्रेस के प्रति की आस्था समाप्त हो गयी थी। 'दहकन के पार' में निरूपमा सेवती ने यह स्थिति चित्रित की है।

भारत-पाकिस्तान के युद्ध के दौरान भी देश में दंगे भडक उठे थे। फलत: लोग बेघर हो गये थे। देश के भीतर भी सांप्रदायिकता के नकाब पोश बैठे है, जो विदेशों से अपने देश को बेच देते है। बात-बात पर सांप्रदादिक लडाइयाँ करवाने से नहीं चूकते। भारत-चीन, भारत पाकिस्तान आदि युद्ध हमारे यहाँ के राष्ट्रद्रोही करते है। जो प्रशासनिक पद पर ऊँचे प्रतिष्ठित है।

इस तरह महिला उपन्यासकारों में राजनीतिक विचारों की लम्बी श्रृंखला है। अनेक उपन्यासों के कथानक स्वतंत्रता पूर्व की सीमा रेखाओं को भी स्पर्श करते है।

5.1.3 धार्मिक एवं वैज्ञानिक विचार :-

मनुष्यता ही मनुष्य का प्रकृत धर्म है। लेकिन मानव ने अपनी सुविधा के अनुसार धर्म बनाया है। यदि मनुष्यता समाप्त हो गई तो मनुष्य में पशुत्व के अतिरिक्त बचता ही क्या ?

'धर्म' शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में होता है। इसका सामान्य और प्रचलित अर्थ है - सांप्रदायिक मतवाद, वैदिक, बौद्ध, जैन, ईसाई, इस्लाम, पारसी आदि धर्मों की चर्चाएँ इस अर्थ की

सूचनाएँ देती है। देश और जाति के आधार पर भी इसका विभाजन होता है। हिंदू धर्म, क्षात्र धर्म आदि विभिन्न वर्गों, वर्गों एवं व्यवसायों के आधार पर भी इसकी कोटियाँ निर्मित होती रहती है। यथा - राजधर्म, प्रजाधर्म, कुलधर्म, जातिधर्म, मित्रधर्म इ.।

धर्म शब्द संस्कृत के 'धृ' धातु से उत्पन्न हुआ है। जिसका अर्थ है धारण साधारण करना।[1] भारत भूमि धर्म भूमि मानी गई है। इसलिए धर्म की जडे यहाँ गहरी है और धर्म का वृक्ष अपनी शाखाओं उपशाखाओं के साथ अपने अस्तित्व को प्रमाणित कर रहा है। भारत में फैले विभिन्न धर्म उसके साक्षी है।

विज्ञान का अर्थ है विशिष्ट ज्ञान। विज्ञान का मानव पर विशेष प्रभाव पडा है। विज्ञान ने क्रमश: जड जात के तथ्यों का नए ढंग से विश्लेषण किया है। इसके द्वारा बहुत से प्राकृतिक नियम प्रकाश में आए है। विज्ञान ने काल अवकाश के व्यवधान को दूर कर मनुष्य को एक दूसरे के निकट आने में सहायता की है। इससे आंतर्राष्ट्रीय भेदभाव मिट गए है।

महिला उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से बहुत कुछ चिंतन मनन किया है और अपने विचारों को पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है। लेखिकाओं ने अपने इस धार्मिक और वैज्ञानिक विचारों से बहुत कुछ ज्ञान दिया है और बहुत कुछ सोचने विचारने के लिए बाध्य किया है।

चरम वैज्ञानिक उन्नति के पश्चात भी समाज में अंधश्रद्धा, भ्रांत धारणाएँ आदि से मुक्त नहीं हो पाया है। इस कारण अनेक ग्राम्य समाज प्रगति नहीं कर पाए है। धार्मिक पृष्ठभूमि पर ग्राम्य समाज में आज भी जादू-टोना, मंत्रादि पर अत्याधिक विश्वास किया जाता है। इसका संदर्भ स्नेह मोहनीन ने अपने उपन्यास 'कल के लिए' में अनेक ग्रामीण अंधविश्वासों को प्रकट किया है। 'ऐलान गली जिंदा है' की लेखिका चंद्रकांता ने कश्मीर के आँचल में गरीबी की रेखा के अंतर्गत जीवन व्यतीत कर रहे निवासियों का अंधविश्वास चित्रित किया है। वैसे तो लेखिका ने कश्मीर की ही नहीं वरन् पूरे भारत की अंधविश्वासिता पर प्रकाश डालना चाहा है। इसी उपन्यास में लेखिका ने एक पुरानी संसारचंद्र का वर्णन किया है, जो आज भी स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी उसी धार्मिक रीतियों में जकडा हुआ है। किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं करना चाहता। उसकी पत्नी भी इसी रीतियों को स्वीकारती है।

---

1. **डॉ. एम. व्यंकटेश्वर - हिंदी के समकालीन महिला उपन्यासकार से उद्धृत, पृ.22**

'डार से बिछुडी' में कृष्णा सोबती ने माशों के माध्यम से ग्रामों में मृत्यु के बाद तेरहवी का जिक्र किया है। ग्रामीण अंधविश्वासों के साथ-साथ प्राचीन परंपराओं, जिन्हें 'संस्कार' कहा गया है उसका भी महिला लेखिकाओं ने जिक्र किया है। मेहरून्निसा परवेज ने 'कोरजा' में ऐसी ही परंपराओं और धार्मिक मान्यताओं को प्रस्तुत किया है।

हमारे देश में जितने लोग है उतने ही आराध्य देवी-देवता भी। इनके प्रति लोगों का असीम विश्वास है। इसलिए उनपर अंधविश्वास, अंधश्रद्धा रखनेवालों की संख्या कम नहीं है। इलाचंद्र जोशी ने 'ऋतु चक्र' में ऐसे अपने विचार कप्तान साहब के चरित्र के माध्यम से प्रकट किए है।

विज्ञान के इस युग में विभिन्न वैज्ञानिक उपलब्धियों के कारण यद्यपि मानव के धार्मिक एवम् सामाजिक मूल्यों का ऱ्हास हुआ है तथापि अंतर्वासी ईश्वर के प्रति आस्था बनी हुई है। मनुष्य आगे बढना चाहता है। वह धर्म को स्वीकार भी नहीं करता परंतु धर्म को त्याग भी नहीं सकता। न जाने ऐसी कौन सी स्थिति उत्पन्न होनी होगी कि उसे इस द्विधा अवस्था में रहना पडता है। शायद परलोक सुधारने की बात उसे प्रेरित करती होगी। इसी संदर्भ में शशिप्रभा शास्त्री ने अपनी कृति 'नार्वे' में ललित मोहन नामक पात्र के माध्यम से प्रकाश डाला है।

नवीन बौद्धिक उन्मेष एवम् चिंतन के परिणाम स्वरूप जनता में एक नवीन चेतना का जन्म हो रहा है। जिसके परिणाम स्वरूप मध्ययुगीन सांस्कृतिक मूल्यों पर प्रश्न चिहन् लग रहे है। अंध:विश्वास, रूढिवादिता, मध्ययुगीन संस्कृति के मुख्य तत्त्व थे तथा सामाजिक चेतना ने रूढिवादी चेतना को तिरस्कृत कर दिया है। निरूपमा सेवती ने 'दहकन के पार' इस उपन्यास में इस नव्य चेतना को प्रधानता दी है, उन्होंने गलित घृणित मान्यताओं का खंडन एवम् नव्य मानवतावादी मान्यताओं का मंडन किया है।

आधुनिक युग में विज्ञान की चरमोन्नत्ति के कारण आध्यात्मिक तथा भावात्मक चिंतन का स्थान वैज्ञानिक चिंतन ने ले लिया है। इसलिए इस युग में मानव तथा विज्ञान सर्वश्रेष्ठ है। तथा ईश्वर और धर्म को गौण स्थान प्राप्त हुआ है। धार्मिकता को मिटाने की पहल युवावर्ग कर रहा है। उसे पुराने धर्म के बंधन मान्य नहीं है। शशिप्रभा शास्त्री ने 'क्योंकि' में इस चिंतन का चित्रण किया है। इस उपन्यास पात्र दीपक जो युवा वर्ग का प्रतिनिधि है, पुरानी धर्म की परम्पराओं को मिटाने वाले के रूप में चित्रित किया है।

इस तरह धर्म अब रूढियों से मुक्ति पाकर स्वतंत्र रूप से मनोभिलाषित मार्ग पर चल रहा है। यह एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। धार्मिक एवम् वैज्ञानिक चिंतन के संदर्भ में मिथिलेश कुमारी, मेहरून्निसा परवेज, कृष्णा सोबती आदि उपन्यासकारों ने उपन्यासों में पात्रों का प्रस्तुतिकरण किया है, जो समाज में धार्मिकता को प्रस्तुत करते है। साथ ही कई पात्रों का ऐसा भी चित्रण हुआ है जो वैज्ञानिकता के संदर्भ में नई व्यवस्था एवम् परम्पराओं को स्वीकार कर पुरानी रीतियों को नष्ट करने के पक्ष में है।

5.2 हिंदी उपन्यासों में महिला लेखन :-

अति प्राचीन काल से जगत के साहित्य में महिलाएँ लेखन करती आयी है। आरंभ से ही नारी साहित्य का केंद्र बनकर वह साहित्य सृजन की दिशा में उन्मुख हुई। वैदिक काल में उसी प्रकार मध्ययुगीन काल की अनेक नारियों ने अपने गीतों से साहित्य को मुखरित किया है। वर्तमान युग में भी वह पीछे नहीं रही है। हिंदी उपन्यास का लेखन का प्रारंभ उन्नीसवी शताब्दी के मध्य काल में हुआ। हिंदी की प्रारंभिक महिला लेखिकाओं में शैल कुमारी देवी, रूकमणी देवी, यशोदा देवी, गिरिजा देवी आदि प्रमुख नाम हैं। इन महिलाओं ने प्रमुख रूप से नारी की करूण स्थिति तो दूसरी ओर नारी के त्याग और बलिदान का भी वर्णन किया है। स्वतंत्रता के बाद हिंदी कथा साहित्य में अनेक महिलाएँ अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना चुकी है। उन्होंने नारी की मानसिकता को बडी गहराई से प्रस्तुत किया है। इन लेखिकाओं ने नारी को अति विशिष्ट और स्वाभाविक ढंग से व्यक्त किया है।

इन लेखिकाओं ने जो भी नारी पात्र चित्रित किए है वह प्रभावशाली और सजीवन बन पडे है। इन लेखिकाओं ने नारी को सहज मानव के रूप में स्थापित किया है। इन्होंने अपनी रचनाओं में सामाजिक, आर्थिक प्रसंगों और राजनीतिक स्थितियों को भी प्रमुखता प्रदान की है।

5.2.1 हिंदी कथा साहित्य में महिला लेखन :-

हिंदी कथा साहित्य के लेखन क्षेत्र में महिलाओं का पदार्पण ''बंग महिला' से माना जाता है। लेकिन उपन्यास की दृष्टि से शैल कुमारी देवी (उमा सुन्दरी), रूक्मणी देवी (मेम और साहब), यशोदा देवी (सच्चा पति प्रेम), प्रियवंदा देवी (लक्ष्मी), गोपाल देवी (दयावती) और गिरिजा देवी (कमला) के नाम उल्लेखनीय है। इन उपन्यासों में इनका मुख्य विषय नारी का त्याग, भारतीय समाज की कुरीतियाँ, बलिदान तथा पति-भक्ति को दिया गया है। स्वतंत्रता पूर्व काल की अन्य लेखिकाओं में कुटुंब प्यारी देवी (हृदय का ताप), ज्योतिर्मयी ठाकुर (मधुबन), तेजरानी दीक्षित (हृदय का काँटा) और श्रीमती पूर्ण शशिदेवी (रात के बादल) महत्त्वपूर्ण हैं।

हिंदी उपन्यास के विकास में अनेक महिलाओं ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। उसमें उषादेवी मित्रा का पदार्पण हिंदी उपन्यासों के क्षेत्र में सन 1936 में हुआ। उन्होंने उपन्यासों ज्यादातर प्रेम और त्याग का वर्णन किया है। 'वचन का मोल', 'पिया', 'जीवन की मुस्कान', 'नष्ट नीड', 'सोहनी' इनकी प्रमुख रचनाएँ है। रजनी पानिकर ने अपनी रचनाओं में कामकाजी नारी का चित्रण किया है। इसके अलावा प्रेमसंबंध और नारी जीवन की समस्याएँ इनके उपन्यास का विषय रहा है। 'ठोकर', 'पान की दीवार', 'मोम के मोती', 'प्यासे बादल', 'जाडे की धूप' आदि इनके उपन्यास है। इन्दिरा नुपूर की उपन्यासों का मुख्य विषय दांपत्य जीवन रहा है। इस संदर्भ में उनकी दो कृतियाँ है - 'सपने मान और हठ', और 'वह कौन थी' आदि। बसंत प्रभा के उपन्यासों में सामाजिक विषमता और पारिवारिक उलझन आदि का चित्रण मिलता है। 'अधूरी तस्वीर' और 'साँझ के साथी' इनकी औपन्यासिक कृतियाँ है।

इन्दुबाली ने अपने उपन्यासों में नारी की भावुकता और संवेदनशीलता को प्रस्तुत किया है। 'सोये प्यार की अनुभूति', 'बाँसुरिया बज उठी' इनके प्रमुख उपन्यास है। कृष्णा सोबती ने नारी की दमित वासना और कुंठा को प्रस्तुत किया है। 'डार से बिछुडी', 'यारों के यार', 'तिन-पहाड', 'मित्रो मरजानी', 'सुरजमुखी अँधेरे के', 'जिंदगी-नामा' 'बादल के घेरे' आदि इनके उपन्यास है। शशिप्रभा शास्त्री ने नारी समस्याएँ और दाम्पत्य जीवन की विसंगतियों को मनोवैज्ञानिक आधार पर चित्रित किया है। 'वीरान रास्ते और झरना', 'अमलतास', 'नावें', 'सीढियाँ', 'कर्क-रेखा', 'परछाइयों के पीछे', 'क्योंकि' आदि। मेहरून्निसा परवेज ने मध्यवर्गीय नारी के शोषण की पीडा को चित्रित किया है। 'आँखों की दहलीज', ' उसका घर', 'कोरजा', 'अकेला पलाश', 'पत्थरवाली गली' आदि। मन्नू भंडारी के उपन्यास सामाजिक समस्या को व्यक्त करते है। 'आपका बंटी', 'एक इंच मुस्कान', 'महाभोज', 'स्वामी' आदि कृतियाँ है। मालती जोशी ने मध्यवर्गीय परिवार के टूटते और बिखरते संबंधों को प्रस्तुत किया है। 'पाषाण युग', 'निष्कासन', 'ज्वालामुखी के गर्भ में', 'सहचारिणी', 'समर्पण का सुख' आदि इनकी कृतियाँ है।

मृदुला गर्ग ने अपने उपन्यासों का विषय पति-पत्नी के बीच बनते बिगडते रिश्तों को बारीकी से चित्रित किया है। 'उसके हिस्से की धूप', 'चितकोबरा', 'वंशज', 'अनित्य', 'और मैं और मैं' आदि। मृणाल पाण्डेय नारी जीवन की विसंगतियाँ, कौटुंबिक एवम् ग्रामीण परिवेश का चित्रण किया है। 'विरूद्ध', 'पाक ने कहा था' आदि। सुनीता जैन ने प्रेम के बदलते स्वरूप को

अभिव्यक्त किया है। ' अनुगूँज', 'मरणातीत', 'बोज्यू' आदि। कृष्णा अग्निहोत्री ने आधुनिक समाज की विडंबनाएँ, भ्रष्टाचार, अनैतिक कार्य आदि को प्रस्तुत किया है। 'बात एक औरत की', 'टपरवाले', 'मुकारिकाये', 'टेसू की टहनियाँ' आदि। मंजुल भगत ने अपनी कृतियों में गहरी संवेदना एवम् व्यापक सहानुभूति को दर्शाया है। 'अनारो', 'बेगाने घर में' , 'टूटा हुआ इन्द्रधनुष', 'लेडिज क्लब', 'खातुल' इन उपन्यासों में चित्रित किया है।

इस तरह उपन्यास की यात्रा कितनी लंबी है यह उषादेवी के उपन्यासों में मंजुल भगत तक के उपन्यासों तक अभिव्यक्त करने पर दिखायी देता है। इनकी कृतियों ने सामाजिक, वैयक्तिक, पारिवारिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवम् नैतिक आदि आयामों को अपने उपन्यासों में ज्ञापित किया है।

5.3 साठोत्तरी हिंदी उपन्यास - परिदृश्य :-

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उपन्यास साहित्य में सभी परिवर्तन और आयामों को स्वीकार किया। यहाँ से ही हिंदी उपन्यास की लोकप्रियता बढती गयी। हिंदी उपन्यास परिवर्तन के अनेक पाडावों से गुजरा हुआ विकास के शिखर की चोटी पर जाकर बैठा है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ-साथ पुरानी पीढियों का स्वप्न भी उसी के साथ चला गया। स्वतंत्र भारत के साहित्यकारों ने आस्था दीप प्रज्वलित करने की कोशिश की लेकिन तब तक भ्रष्टाचार की भनक लग चुकी थी। लेकिन नई पीढ़ी के पास भी कोई आदर्श था नहीं, न ही जीवन के उच्च मूल्य। देश में बढ़ती हुई हिंसा ने अनुशासन हीनता, घूसखोरी, चोरबाजारी, सांप्रदायिकता, भाषावाद, आर्थिक असंतुलन, बेरोजगारी, महँगाई आदि ने विश्वासों और आदर्श मूल्यों के प्रति जड हिला दी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी देश में चल रही सामाजिक, धार्मिक विषमताएँ खत्म नहीं हो पायी। देश को राजनीति में स्वतंत्रता बाद में मिली लेकिन साहित्यकारों ने अपनी लेखनी के द्वारा ही अपनी मानसिक मुक्ति की घोषणा कर चुका था। समाज में हो रहे उतार-चढाव, बाहरी और भितरी संघर्ष साहित्यकार को अपनी लेखनी द्वारा चित्रित करना पडता है। इसीलिए आज उपन्यास साहित्य को इतना महत्त्व प्राप्त हुआ है। नया साहित्यकार अपने नए विचारों के साथ हर जटिल समस्या का समाधान ढूँढना चाहता है। आज के उपन्यास इसके प्रमाण है।

5.3.1 व्यक्तिवादी चिंतन :-

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी भारतीय समाज में वही पुराने विचार रहे जिससे सामाजिक विचार दुषित ही रहा। अनेकता में एकता, शांतिपूर्ण सहअस्तित्व, सब धर्मों और जातियों के प्रति समभाव, पिछडी जातियों के लिए प्रगति का मार्ग प्रशस्त करना, अशिक्षितों को शिक्षित करना, स्त्रियों को समान अधिकार देना आदि अनेक बातें भी जो विचारकों को नयी चेतना प्रदान की। महानगर में बनते जा रहे गहरे प्रश्न उसमें महत्त्वपूर्ण जनसंख्या महानगरों की आधुनिक समस्याओं को उजागर कर रही है। इसी प्रकार के आधुनिक महानगरी के प्रश्न साहित्यकारों को आकर्षित कर रहे है। महानगरों की समृद्धि और भीड-भाड एवं यंत्रवत् जीवन इसके विषमता के कारण साहित्य में ऐसी मानसिकता का विकास हुआ जिसे 'एलियनेशन' और 'बोरडम' कहा जाता है।

आज विज्ञान और प्रौदयोगिक के क्षेत्र ने मानव के लिए अनेक सुख-सुविधाओं से भरपूर विधाएँ प्रदान की है। लेकिन दूसरी ओर इसमें लगाम भी लगा दिया है। इसीलिए आज की युवा पीढी विद्रोह के साथ-साथ पुरानी परंपराएँ - रूढियाँ बदलना चाहती है। इसमें तत्काल परिवर्तन चाहती है। यह जो पुरानी सडी-गली परंपराएँ है इससे छुटकारा पाना चाहती है। इस परिस्थितियों को सामने रखकर आज की रचनाओं में बदलाव आ रहे है। अतएव व्यक्तिवादी चिंतन का मूल लक्ष्य अपने अस्तित्व बोध की सार्थकता स्थापित करना है और व्यक्ति की नियति पहचानना है।

5.3.2 महानगर बोध :-

महानगरों की मुख्य समस्या है बढती हुई जनसंख्या और असंतोषप्रद आर्थिक स्थिति। हर कोई अपनी आजीविका की तलाश में महानगर की ओर बढ़ता जा रहा है। इससे महानगरों की दशा दयनीय हो गई है। इन सबसे महानगरों में गंदगी, जनसंख्या, इमारतों के जंगल इतने बढ़ गए है कि इससे मानव जीवन जानवरों से बदत्तर होता जा रहा है।

नागरीकरण में सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या बनती जा रही है महँगाई और बेकारी। इन सबका चित्रण अनेक साहित्यकारों ने व्यंग्यता से करने की कोशिश की है। नगरीय एवं मध्यवर्गीय जीवन को संत्रस्त करने वाली अनेक प्रकार की विडंबनाएँ, घुटन भरे वातावरण, कडवाहट, कुरूपता, खोखलापन, आडंबर, भ्रष्टाचार, क्रूरता, झुठे मुखौटे, जीवन के तनाव, व्यक्तित्व का कई हिस्सों में बँट जाना आदि बातें है, जिनसे महानगरीय बोध होता है। नगरों में रहनेवाला व्यक्ति न तो पाश्चात्य संस्कृति की विचारधारा को अपना पाया है और न देशी जीवन को।

5.3.3 आधुनिकता बोध :-

मनुष्य जब वर्तमान के संबंध में अपने अतीत को देखता है, तो वह बहुत कुछ परिवर्तित अनुभव करता है। वैसे देखा जाए तो वर्तमान अतीत की ही अगली कडी है। जो कुछ समय पश्चात उसमें जड जाती है। फिर भी दोनों के बीच एक विरोधी रेखा होती है। वर्तमान के क्षणों में जीते हुए जहाँ कही विरोध दिखाई देता है। अथवा विरोधाभास होता है, उसके आसपास ही आधुनिकता प्रक्रिया है, जिसकी कोई पूर्वनिश्चित और अपरिवर्तनीय दिशा नहीं है। मनुष्य और उसकी अर्ध-विकसित अथवा अल्पविकसित आधुनिकता को जानने के लिए व्यापक ऐतिहासिक दृष्टि की आवश्यकता है।

आज दुनिया इतनी तेजी से बढ़ रही है कि एक आधुनिकता समझने की चेष्टा करते है तो दूसरी आधुनिकता दस्तक देती है। आज की आधुनिकता कल ऐतिहासिकता बन जाती है। यह प्रतिक्रिया लेखक, कवि, कलाकार के साथ-साथ जागरूक, सचेत, शिक्षित व्यक्ति में भी हो सकती है। अधिकतर उपन्यासों में साहित्यकारों ने इसी आधुनिकता को वर्णित किया है। आधुनिकता किसी पर लादी या थोपी नहीं जा सकती वह निरंतर क्रिया है।

सामायिक उपन्यासों की खासियत यह होती है कि सूक्ष्म मन को टटोलना, उसे खोजना, मन की व्यथा की गाथा चित्रित करना। इन्हीं विशेषताओं को या समस्याओं को साहित्यकारों ने स्त्री और पुरूष के माध्यम से चित्रित किया है। आज की नवीन जिंदगी के साथ समझोता न कर पाने से स्त्री पुरूषों में अजनबीपन तलखी एवं जीवन की विसंगतयों का अनुभव या तनाव दिखायी दे रहा है।

हिंदी उपन्यासों में आधुनिकता बोध का प्रारंभ प्रेमचंद कृत 'गोदान' से माना जाता है। इस उपन्यास में समस्या का समाधान नहीं दिया गया, बल्कि होरी की मृत्यु के द्वारा आधुनिकता का बोध दर्शाया है। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में जो आधुनिकता प्रस्तुत की यह आधुनिकता उस युग में अन्य किसी भी साहित्यकार को नहीं सकी। हिंदी उपन्यास में आधुनिकता का प्रारंभ तो 'गोदान' से माना जाता है और दूसरा मोड 'शेखर : एक जीवनी' और तीसरा निर्मल वर्मा के 'वे दिन' में लक्षित है।

हिंदी उपन्यासों में आधुनिकता की चुनौती को विभिन्न स्तरों पर स्वीकारने का प्रयास किया है। इसकी अभिव्यक्ति 'नदी के द्वीप' (1951), 'बलचनमा' (1952), 'बूँद और समुद्र' (1956), 'उखडे हुए लोग' (1956), 'उसका बचपन' (1957), 'झूठा सच' (1958, 1960),

'यह पथ बधु था' (1962), 'वे दिन' (1964), 'एक पति के नोट्स' (1966), 'रूकोगी नहीं राधिका' (1967), 'न आनेवाला कल' (1968), 'कंदील और कुहास' (1969) आदि उपन्यासों में भिन्न-भिन्न स्तर पर हुई है।

निर्मल वर्मा के 'वे दिन' इस उपन्यास में बिखराव ही बिखराव है, उद्देश्य का अभाव है और पुराने ढाँचे को तोडा है। तथा अंत को अंतहीन बनाता है। साठोत्तरी हिंदी उपन्यासकारों ने मुख्यत: अभाव और संघर्ष की जिंदगी की पहचान करायी है। इन्होंने अपनी रचनाओं में नया शिल्प, नई संवेदनशीलता, युग-बोध आदि को हिंदी उपन्यास साहित्य में नया मोड दिया है। इस कारण हिंदी उपन्यासों का भविष्य उज्ज्वल बनता जा रहा है।

अ) नारी जागरण :-

साठ के दशक में भारतीय समाज की नारी को मुक्ति देने की चेतना अधिक बढती जा रही है। आज की नारी शिक्षा प्राप्त कर अपने अलग व्यक्तित्व को बदल रही है। इससे नारी जीवन में परिवर्तन हो रहा है। समाज में विवाह, दहेज प्रथा, विविध संबंधों में कट्टरता जैसी रूढियों के साथ-साथ अभूतपूर्व परिवर्तन से अंतर्जातीय विवाह, विज्ञापन द्वारा विवाह, विवाह से पहले लडकी-लडकियों का विचारों का आदान-प्रदान, लडकी का नौकरी करना आदि आधुनिक बदलाव नारी में दिखायी दे रहे है।

नारीवादी चेतना का चित्रण प्रेमचंद, प्रेमचंदोत्तर तथा स्वातंत्र्योत्तर युग के अधिकांश उपन्यासों में हुआ है। लेकिन इन्होंने भी नारी-नारी में फर्क किया है। इन साहित्यकारों ने जो नारी साधारण शिक्षित नारी है, उसे सहानुभूति दी है। जो उच्च शिक्षित है उसे नहीं। जैसे प्रेमचंद के 'गोदान' की 'मालती', राधिकारमण प्रसाद सिंह के 'रामरहीम' की 'बिजली' और भगवतीचरण वर्मा के 'तीन वर्ष' की प्रभा, 'रेखा' उपन्यास की रेखा। इससे उपन्यासकारों की दृष्टि में अंतर लक्षित होता है। इनके अलावा यशपाल, आनंद प्रकाश जैन, राजेंद्र अवस्थी, मजहर चौहान, सुदर्शन नारंग के उपन्यासों के अधिकतर उपन्यासों में नारी पात्र शिक्षित है।

आ) वैज्ञानिक और औद्योगिक प्रगति :-

आज मनुष्य ने हर मुसीबत से सामना करना सीखा है, वह हर मुसीबत का हल जानता है। इस बल पर वह आगे बढ़ रहा है जो उसे विज्ञान ने दी है। मनुष्य के जीवन को ही बदलने की कोशिश वैज्ञानिक और औद्योगिक प्रगति ने की है। जीवन में चारों तरफ खुशियाँ पाने के लिए

मनुष्य ने हमेशा विज्ञान की सहायता ली है। इसी भौतिक सुखों के साथ मनुष्य का नाश भी दिखायी दे रहा है। व्यक्ति ने व्यक्ति को अलग कर दिया है। प्राकृतिक नियम तोडकर मनुष्य ने यह प्रगति हासिल की है। इस प्रगति का पर्दा उसे अपने परिवार से अलग कर रहा है। मानवीय संबंधों में अपनापन, लगाव नष्ट होकर यंत्रवत्ता आ गयी है।

आज के उपन्यास इस विज्ञान क्षेत्र से अछूते नहीं है। इस साहित्य पर स्पष्ट रूप से विज्ञान का तथा पाश्चात्य का प्रभाव दिखाई देता है। इससे आज का साहित्यकार और उसका साहित्य पाश्चात्य जगत् की ओर खिंचता चला जा रहा है।

इ) आत्मपरिवर्तन, अजनबीपन, अकेलापन :-

आज जीवन इतना व्यस्त हो गया है कि मनुष्य को मनुष्य होने का एहसास नहीं है। वह बदलते जीवन मूल्यों के साथ अकेलेपन को अपना रहा है और यह अकेलापन उसे खाए जा रहा है। यह स्थिति खासकर नगरों और महानगरों में दिखाई देती है। इस अकेलेपन की शिकार आज की नारी भी हो रही है । यह अकेलापन उन महिलाओं को भी चूभता है, जो कामकाजी न होकर एक साधारण महिला है। यह अकेलापन उसे अपने पति के साथ रहकर भी महसूस करना पडता है। और आखिर में नारी अपना अकेलापन दूर करने के लिए पुरूष को साथी बनाना पसंद करती है। इस तरह केवल नारी ही इस अकेलेपन को सहन नहीं करती तो इसमें पुरूष भी इसका हिस्सा बन जाता है। आज के युग में यह स्थिति बढती जा रही है। नारी को अकेलापन इतना सताता है कि वह दिन काम में बिताती है लेकिन सुबह-शाम उसे बहुत कठिन बन जाते है। इसका वर्णन निरूपमा सेवती के 'पतझड की आवाजें' में परिलक्षित किया है। इसी तरह 'बँटता हुआ आदमी' का 'शरद गुप्ता' का भी अकेलापन चित्रित किया है। परिस्थितियों का मारा शरद अपनी पत्नी का साथ छूटने से अकेला पडता है और यह अकेलापन दूर करने के लिए अन्य दो युवतियों के संपर्क में आता है।

इनके अतिरिक्त कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, मणिका मोहिनी, शशिप्रभा शास्त्री, मृदुला गर्ग आदि लेखिकाओं ने इस समस्या को अपने उपन्यासों में ज्ञापित किया है।

परिवारों का विघटन भी अकेलेपन का मुख्य कारण बन सकता है। महानगरों में बसने वाले और अपने-अपने व्यक्तित्वों के प्रति गलत ढंग से विचार करने पर परिवारों का टूटना, अजनबी और अकेलेपन की गाथा आज के जीवन की मुख्य समस्या बन गयी है। हिंदी के उपन्यासों में चित्रित अकेलापन स्वयं साहित्यकारों ने भोगा हुआ यथार्थ चित्रण है। जिन्हें हम महानगरों में रहनेवाले विशिष्ट वर्ग के उपन्यास भी कह सकते है।

5.3.4 स्त्री-पुरूष संबंधों की नयी व्याख्या :-

व्यक्ति को केंद्र में रखकर साठोत्तरी उपन्यास में स्त्री संबंधों को, दांपत्य जीवन के बाहर या विवाह के पूर्व संबंधों को परखा गया है। सबसे महत्तवपूर्ण पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका एवं घरेलु स्त्री के साथ पुरूषों के संबंधों को आज के उपन्यासों ने अनेक समस्याओं के साथ चित्रित किया है। निरूपमा सेवती ने 'मेरा नरक अपना है' में इस समस्या का खुलकर चित्रण किया है। इसी तरह 'दहकन के पार' में पवित्र प्रेम की अनुभूति मिलती है। किंतु ऐसी समस्याओं में बच्चों की मनोवैज्ञानिकता गंभीर रूप धारण कर लेती है। इसका वर्णन मन्नू भंडारी ने 'आपका बंटी' में प्रस्तुत किया है। इस तरह नारी के बदलते संदर्भ, विसंगतियाँ आदि का संघर्षपूर्ण चित्रण करने में मन्नू भंडारी, सुरेश सिन्हा, उषादेवी मित्रा, शिवानी, मृदुला गर्ग, कांता भारती आदि उपन्यासकारों के नाम उल्लेखित है। मैत्रेयी पुष्पा ने अन्याय का प्रतिकार करनेवाली एवं पुरुष मानसिकता के खिलाफ बगावत करने वाली स्त्री चित्रित की है।

साठोत्तरी उपन्यासों में जो रचनाएँ लिखी जा रही है, वह पश्चिमी संस्कृति का अंधानुकरण है, जिसमें भारतीय समाज की कई भी भनक तक नहीं है। इससे उनके उपन्यास में वर्णित परिस्थितियाँ झूठी प्रतीत होती है। ऐसा लगता है कि इन उपन्यासों में बढता हुआ पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव उपन्यासों की असलियत को कहीं गुमशुदा कर रहा है।

5.3.5 बदलते जीवन संदर्भ :-

साठोत्तरी उपन्यासों में जीवन के प्रति अत्यंत गहराई से सोच विचार हो रहा है। विकास के क्रम से हिंदी उपन्यासों को विशिष्ट रूप से पहचाना जा सकता है। इसका अत्यंत प्रभावी स्वरूप प्रयोगात्मकता है।

मनुष्य में जन्म से लेकर अंत तक कई बदलाव आते रहते है। भारत-विभाजन, स्वाधीनता प्राप्ति और आधुनिकता बोध आदि से देश के आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक स्थिति में तेजी से बदलाव आते गए। वैज्ञानिक प्रगति ने तो मानव को प्रतिक्षण बदलने की कोशिश की है।

आधुनिक उपन्यासकारों को मनुष्य के मन की गहरी से गहरी पर्ते खोलने में विशिष्ट सफलता मिली है। भारत में इन कुछ दशकों में वैसा परिवर्तन नहीं हुआ जो दो सौ वर्षों पहले हुआ था। मनुष्य को अपने लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, राजनीतिक स्थायित्व, संस्कृति आदि के प्रति उचित दृष्टिकोन नहीं रहा और न ही वह समाज को उचित नेतृत्व प्रदान कर पा रहा है। जीवन की विषम स्थितियों

के कारण कमजोर व्यक्ति अपने आप को टूटा हुआ महसूस करने लगा। वह न तो सर्वहारा वर्ग के साथ समझौता कर सका और न उच्चवर्ग का दंभ भी सहन कर सका।

इसके अतिरिक्त उसमें अप्राकृतिक काम संबंध, नशीले पदार्थों का सेवन, तलाक, हडताल, भ्रूणहत्या आदि विसंगतियाँ उत्पन्न हुई। इस परिणाम वह समाज की बंधी-बँधायी समाज व्यवस्था से हट जाना चाहता है। सडी-गली परंपराओं को तोड वह युद्ध की विभीषिका से अलग रहना चाहता है।

5.3.6 साहसपूर्ण महिला लेखन :-

आज के युग में महिलाएँ भी पिछे नहीं है, उन्होंने अपना साहसपूर्ण कदम आगे बढ़ाकर लेखन कार्य में अनेक रचनाएँ लिखी है। आज कल महिला लेखन का कार्य उल्लेखनीय और लोकप्रिय बन गया है। प्रकृति ने स्त्री को अधिक भावुक और संवेदनशील बनाया है। स्त्री में श्रद्धा, विश्वास, सहनशीलता, सहानुभूति, सामंजस्य की भावना अधिक होती है। इसी कारण महिला लेखिकाओं का लेखन अत्यंत हृदयस्पर्शी और द्रवित करनेवाला होता है। स्त्री-पुरूषों में बौद्धिक क्षमताओं में अंतर नहीं है लेकिन स्वाभाविकता और सामाजिक विषमताओं के कारण इनमें यह अंतर दिखाना स्वाभाविक है। स्त्री में स्नेह, सहानुभूति, प्रेम, ममता, करूणा, वात्सल्य, वेदना आदि गुण कुट-कुट कर भरे होते है, इसलिए उनमें पुरूषों से ज्यादा सफलता प्राप्त होती है।

स्त्री का मुख्य विकास क्षेत्र पारिवारिक जीवन ही है। इसमें उसे सफलता हो सकती है लेकिन पुरूषों द्वारा रचित साहित्य में दुर्लभ होगी। मातृ-हृदय, शिशु क्रीडा, सौतिया दाह आदि विषयों पर स्त्री जितने मर्मज्ञता से लिख सकती है उतना पुरूष नहीं लिख सकता है। इसलिए आज का महिला लेखन इतनी ऊँचाई के शिखर पर पहुँचा है।

5.4 अलका सरावगी का हिंदी साहित्य में लेखन :-

हिंदी साहित्य में अलका सरावगी का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण बन गया है। अलका सरावगी ने अपने उपन्यास में नारी के हर पहलु को सामने रखा है। अलकाजी ने कुल मिलाकर चार उपन्यास लिखे है। लेकिन इन्हीं उपन्यासों के जरिए अलकाजी ने बहुत बडा सम्मान पाया है। अलका जी का पहला उपन्यास 'कलिकथा : वाया बाइपास' (1998) इसको साहित्य अकादमी और श्रीकांत वर्मा पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।

अलका सरावगी ने अपने उपन्यासों में नारी की स्थिति, परिवार में उसका स्थान और नारी का अकेलापन आदि को चित्रित किया है। अलका सरावगी के उपन्यासों में खासकर कोलकाता के

मारवाडी समाज का प्रभाव दिखायी देता है। फिर भी स्त्री-पुरूषों के संबंध में वैवाहिक स्थिति का, परिवार के वाद-विवादों का चित्रण पूरे समाज का चित्रण लगता है। डॉ. एम. व्यंकटेश्वर कहते है कि, "पति-पत्नी, प्रेमी-प्रेमिका एवं घरेलु स्त्री के साथ पुरूष के संबंधों को दृष्टि में रखते हुए हिंदी उपन्यासों ने अनेक समस्याएँ उठाई है।"[1] इस प्रकार हिंदी साहित्य में इन्हीं समस्याओं को लेकर साहित्य लिखा जाता है। लेकिन अलका सरावगी का लिखने का ढंग विशिष्ट है। उन्होंने अपने उपन्यासों में स्वातंत्र्यपूर्व और स्वातंत्र्योत्तर घटनाओं का चित्रण और मारवाडी समाज का दर्शन और नारी के अनेक साहसी कदम और नारी को हर समय अपनी समस्याओं के साथ जुझते हुए दिखाया है।

निरूपमा सेवती ने अपने उपन्यासों में स्त्री पुरूषों की समस्याओं को सामने लाया है। 'बँटता हुआ आदमी' के माध्यम से नायक शरद गुप्ता परिस्थितियों का सताया हुआ व्यक्ति है। उसे आर्थिक विपन्नता भी तोड देती है, साथ ही पत्नी भी उसे अकेला छोडकर चली जाती है, तब वह अपनी इस बोरियत को मिटाने के लिए 'अनिता' और 'सुनन्दा' की ओर आकर्षित होता है। निरूपमा सेवती के प्राय: सभी उपन्यास इसी समस्या को लेकर लिखे गए है। 'मेरा नरक अपना है' में विवाहित नारी भी अकेलेपन को दूर करने के लिए प्रेमी का सहारा लेती है। मृदुला गर्ग ने पति-पत्नी के बीच बनते बिघडते रिश्तों को बारीकी से चित्रित किया है। सहानुभूति न वह चाहती है न ही बाँटती है।

मंजुल भगत की कृतियों में गहरी संवेदना एवं व्यापक सहानुभूति के दर्शन होते है। इनके नारी पात्र परिस्थितियों से पलायन नहीं करते। वे उससे जूझते है। स्थितियों से टकराकर टिक रहने की क्षमता उनमें है। विद्रोह में उनका विश्वास नहीं। मालती जोशी ने हिंदी साहित्य में अनेक विधाओं को गति दी है। परम्परा का निर्वाह और आधुनिकता का समन्वय इनकी कृतियों में दिखाई देता है। मध्यवर्गीय परिवार के टूटते और बिखरते संबंधों, प्रेम और विवाह के उलझे स्वरूप को इन्होंने उजागर किया है।

मन्नू भंडारी के उपन्यास विभिन्न सामाजिक समस्याओं को व्यक्त करते हैं। उनके उपन्यासों में माता-पिता के तलाक से उत्पन्न बालक की मन:स्थिति का चित्रण तथा त्रिकोणात्मक संबंधों का

---

1. **डॉ. एम. व्यंकटेश्वर - हिंदी के समकालीन महिला उपन्यासकार से उद्धृत, पृ.22**

चित्रण सफलतापूर्वक हुआ है। आज के राजनैतिक वातावरण की दुविधापूर्व स्थितियों का चित्रण भी इनके उपन्यासों में हुआ है, जैसे; 'आपका बंटी', 'एक इंच मुस्कान', 'महाभोग', 'स्वामी' आदि।

शशि प्रभा शास्त्री को मानव मन की गहरी पकड है। नौकरी पेशा नारी की समस्याएँ और दांपत्य जीवन की विसंगतियों को मनोवैज्ञानिक आधार पर उन्होंने चित्रित किया है। उदा. 'अमलतास', 'नावें', 'सीढियाँ' आदि।

अत: अलका सरावगी भी अपने उपन्यासों में ऐसे मनोवैज्ञानिक चित्रण से पिछे नहीं है। अलकाजी ने अपने उपन्यासों में मारवाडी समाज का तथा शहरी जीवन की मानसिकता का चित्रण किया है। प्रस्तुत उपन्यासों में अलकाजी ने पात्रों को भी आधुनिकता से अनुकूल स्थिति में दर्शाया है।

5.4.1 अलका सरावगी के उपन्यासों में नारी-जीवन :-

आज हम परिवर्तनशील युग में जी रहे है। परिस्थितियाँ बदल रही है और मानव की भौतिक प्रगति के अनुरूप उसकी आशा-आकांक्षाएँ भी बढ रही है। इन तमाम स्थितियों के बीच नारी अपने परिवेश में समायोजित करने की दिशा में कहाँ तक सफल हो चुकी है ? इन तत्त्वों को अलकाजी ने उपन्यासों की परिधि में परिभाषित करने की कोशिश कहाँ तक सफल रही है? सच पूछा जाय तो सृष्टि के मूल में नारी का ही अस्तित्व है, किंतु उन दोनों को समान मानने में ही सृष्टि की वास्तविकता है।

नारी के संबंध में प्रेमचंद जी कहते है - ''सत्य की एक चिनगारी असत्य के एक पहाड को भस्म करती है। स्त्री पुरूष से उतनी ही श्रेष्ठ है जितना प्रकाश अँधेरे से। पुरूषों की रची हुई इस संस्कृति में स्नेह कहा है, सहयोग कहा है।''[1]

अलकाजी ने अपने उपन्यासों में नारी जीवन के अनेक पहलूओं को प्रस्तुत किया है। आधुनिक नारी का सामाजिक जीवन, पारिवारिक जीवन, दांपत्य जीवन, रहन-सहन आदि अनेक समस्याओं को चित्रित किया है।

5.4.1-1 नारी का सामाजिक जीवन :-

विवेच्य उपन्यासों में अलकाजी ने नारी का सामाजिक जीवन यथार्थ रूप में परिलक्षित होता है। हमारे यहाँ आधुनिक काल से पहले नारी का सामाजिक जीवन दुर्लक्षित और उपेक्षित था।

---

1. **डॉ. एम. व्यंकटेश्वर - हिंदी के समकालीन महिला उपन्यासकार से उद्धृत, पृ.**

वह पुरूषों के मन बहलाव का ऐसा खिलौना थी, जिसे काम होने पर फेंक दिया जाता है। उसके सुख-दु:खों में किसी को भी सहानुभूति नहीं थी। अनेक सामाजिक कुप्रथाओं का बंधन उसी पर था। उसके कारण उसका जीवन अधिकाधिक दु:खी बन गया था। नारी का समाज में स्वतंत्र अस्तित्व नहीं था।

अलकाजी के 'कलिकथा : वाया बाइपास' में भी किशोर अपने पाँचों लडकियों को कहीं बाहर नहीं जाने दते, किसी से बातें करने भी नहीं देते। लडकियों को हमेशा अपने आँखों के सामने घर में दबा कर रख देते है। 'शेष कादम्बरी' की रूबी दी एक समाजसेविका है, परामर्श संस्था चलाती है। जिसमें नारी की समस्याओं को सुलझाया जाता है। और समाज में उसे न्याय देने की कोशिश रूबी दी करती है, लेकिन यह सब उसके पति सुधीर को अच्छा नहीं लगता। इसलिए दोनों में वाद विवाद होते है। रूबी दी के इस सेवा पर वह चिढता है। वह रूबी दी को चार दिवारी के अंदर ही देखना चाहता है। समाज में भी रूबी दी को बहुत समस्याओं का मुकाबला करना पडता है।

'कोई बात नहीं' की आरती मौसी शशांक की बीमारी को अपने किताब में लाकर समाज के सामने रखने की कोशिश करती है। उसी प्रकार इसी उपन्यास की शशांक की दादी को भी अनेक सामाजिक समस्याओं से जुझना पडता है।

'शेष कादम्बरी' में रूबी दी को कभी भी अपनी लडकियों का सहारा नहीं मिला। लेकिन उनकी नातिन कादंबरी उनका सहारा बन जाती है और उन्हें यह संस्था चलाने के लिए प्रेरित करती है।

2. पारिवारिक जीवन :-

विवेच्य उपन्यासों में आधुनिक नारी का पारिवारिक जीवन यथार्थता से चित्रित हुआ दृष्टिगोचर होता है। आधुनिक पारिवारिक वातावरण का सजीव अंकन विवेच्य उपन्यासों में मिलता है। इसका प्रमुख कारण है भारत में अंग्रेज शासक के साथ पाश्चात्य सभ्यता का आगमन एवं उसका प्रचार पाश्चात्य सभ्यता के परिणामस्वरूप यहाँ परंपरागत एवं आधुनिक संस्कृतियों में टकराहट होने लगी। क्योंकि यहाँ एक तो पाश्चात्य सभ्यता को लोग पूर्णत: ग्रहण भी नहीं कर सकते थे और अपनी इस परंपरागत संस्कृति का गहन भी नहीं कर रहे थे। इस टकराहट के कारण समाज में अस्थिरता निर्माण हो गई थी। अलका ने 'कलिकथा : वाया बाइपास' में इसका उत्तम उदाहरण है। किशोर बाबू की बहू जो आधुनिक नारी के साथ पाश्चात्य संस्कृति को स्वीकारती है।'सलवार कुरती पहनूंगी। साडी में झंझट है।' 'लेकिन आजकल फैशन नहीं है बिंदी लगाने का।' 'क्लबों में देर

रात तक डांस करना भी इसी तरह की चीज है।''[1] इस प्रकार किशोर बाबू की बहू आधुनिक विचारों की नारी है, लेकिन इसमें पाश्चात्य संस्कृति का बहुत प्रभाव दिखायी देता है। उसी प्रकार वह और एक बात भी कहती है, बच्चा पैदा न करने की।

'शेष कादम्बरी' में कादम्बरी में माँ-बाप विदेश में बसे है और कादम्बरी फ्रेंच कट दाढीवाले पत्रकार के साथ दिल्ली जैसी जगह पर अकेली रहती है । अखबार टीवी के काम करती है। ये स्वतंत्र विचार से अपनी जिंदगी जीती है। यही आधुनिक नारी की एक पहचान हो गई है। रूबी दी की बेटी गौरा अपनी माँ से कहती है कि, ''तुमने मुझे कभी प्रेम ही नहीं किया, क्योंकि मैं पापा की तरह साँवली थी। मुझे माँ का प्रेम नहीं मिला।''[2]

'कोई बात नहीं' में नारी की घुटन, आत्मपीडा है, जैसे - ''मेरी माँ होती, तो मुझे सोने से सिर से पैर तक पीली कर देती।''[3] अर्थात दादी अपने ही परिवार में पराई हो गयी है।

निष्कर्षत: स्पष्ट है कि अलका सरावगी ने नारी के प्राय: दु:खपूर्ण पारिवारिक जीवन को पर्याप्त मात्रा में चित्रित किया हुआ दृष्टिगोचर होता है।

3. दांपत्य जीवन :-

विवेच्य उपन्यासों में आधुनिक नारी का दांपत्य-जीवन भी रूपायित हुआ है। दांपत्य संबंध मुख्य रूप से पति-पत्नी की समझ-बूझ संतुष्टि तथा अपारिवारिक स्थितियों पर निर्भर रहता है। किंतु बदले संदर्भों में पति-पत्नी दो विभिन्न भाग बनकर, अपने-अपने हित में खोकर अपनी व्यक्तिगत खुशियों को पूरा करने की कोशिश में एक दूसरों को कुंठित दुखी करते है। जैसे 'शेष कादम्बरी' में सुधीर की पत्नी रूबी गुप्ता की जिंदगी भी तनावपूर्ण रहती है। सुधीर ने सिर्फ एक वाक्य से उनका नाता उसकी दुनिया से तोड दिया था। जिसमें उठ-बैठ का अधिकार रूबी को कोलकाता के सबसे रईस खानदान की पुत्री होने के नाते सहज मिला हुआ था - ''जिन लोगों के घर से तुम्हारे लिए चाय-पानी के बुलावे आते है, मैं उनके लिए घर बनाने के लिए तपती धूप में घंटों बाहर खडा रहता हूँ और कोई एक गिलास पानी के लिए भी नहीं पूछता।''[4] इसी कारण रूबी दी ने अपने पति के लिए इन स्नेहपूर्ण संबंधों को तोडा था।

---

1. **अलका सरावगी - कलिकथा : वाया बाइपास, पृ. 203**
2. **अलका सरावगी - शेष कादम्बरी, पृ. 108**
3. **अलका सरावगी - कोई बात नहीं, पृ. 36**
4. **अलका सरावगी - शेष कादम्बरी, पृ. 104**

'कलिकथा : वाया बाइपास' में किशोर बाबू की बाइपास सर्जरी के बाद वह बिलकुल ठीक हो जाते है और अपनी दादा-परदादा की डायरियाँ लेकर पढ़ते रहते है। इसी कारण उनकी पत्नी उनसे नाराज हो जाती है।

इस प्रकार दांपत्य जीवन में कोई भी कारण से तनाव निर्माण हो सकता है। यह तनाव अलकाजी ने अपने उपन्यास में प्रस्तुत किया है।

4. स्वतंत्रता की सीमाओं को तोडनेवाली नारी :-

विवेच्य उपन्यासों में आधुनिक नारी का चित्रण पर्याप्त मात्रा में परिलक्षित होता है। आधुनिक नारी-जीवन को विशेष रूप से 'शेष कादम्बरी', 'कोई बात नहीं' में प्रस्तुत किया है। कादम्बरी अपने माँ-बाप को छोडकर एक फ्रेंच कट दाढीवाले पत्रकार के साथ दिल्ली में अकेली रहती है। अपने माँ बाप से कहे बिना वह उसके साथ अकेली रहती है। रूबी दी सोचती है कि ''अखबार टी.वी. में काम करती है, तो क्या आखिर है तो चोबीस साली की।''[1] नीना जो ''बहूबाजार के रेड लाईट एरिया में वेश्याओं के बच्चों के लिए स्कूल चलाती है।''[2] हर सीमा को आधुनिक नारी ने लॉघा है। रूबी दी माया के बारे में बताते वक्त कहती है कि ''माया की दुनिया अलग है, वह नर्स है जब दुनिया सोती है तो माया जागती है और सारी दुनिया उठती है तो माया सोती है।''[3] कादम्बरी के वेश्याओं पर बनायी डाक्यूमेंटरी में वह कहती है कि, ''शहरों में पैसा कमाकर घर चलानेवाली औरतें उम्र ढलने पर वहाँ लौटकर बाकायदा इज्जतदार महिलाएँ मानी जाती है - उसी तरह जैसे रिटायर्ड सैनिक होते है।''[4] रूबी दी की बेटी गौरी एक विदेशी लडके से शादी करती है। इससे रूबी दी को बहुत फिक्र होती है। लेकिन उसे समझाना भी बडी मुश्किल है। इस तरह आधुनिक महिला को स्वतंत्रता से ज्यादा स्वतंत्रता मिली है। गौरी की दृष्टि से यह आधुनिक जीवन पद्धति है।

5. रहन-सहन :-

शिक्षा के प्रसार के कारण नारी जीवन में आधुनिकता आ गई है। आधुनिकता के लिए कोई विशिष्ट सीमा रेखा नहीं है। क्योंकि मनुष्य यह परिवर्तनशील प्राणी है। वह अपने दिमागी तौर पर नये का निर्माण करता है। आधुनिकता यह खंडित होनेवाली क्रिया नहीं है। वह निरंतन चलनेवाली

---

1. **अलका सरावगी - शेष कादम्बरी, पृ. 12**
2. **वही, पृ. 61**
3. **वही, पृ. 61**
4. **वही, पृ. 62**

क्रिया है। 'कलिकथा : वाया बाइपास' में किशोर बाबू की बहू भी अपने आधुनिक विचारों के साथ जिना चाहती है। किशोर बाबू के पुराने सिद्धांतों को ठुकराना चाहती है। ''कॉलेज में पढ़ूँगी।'' ''सलवार-कुर्ती पहनूँगी। साडी में झंझट है।''[1] वह माथे पर बिंदी भी नहीं लगाना चाहती, जो औरतों का सुहाग चिन्ह है। इस तरह आधुनिक नारी का रहन-सहन बदलता जा रहा है। दूसरों की नजर में आने के लिए आधुनिक नारी कृत्रिम साधनों का उपयोग करती है। विशेष रूप में पुरूषों की नजरों को आकर्षित करती है। वह इसी कृत्य को नासमझी में आधुनिकता समझती है।

'शेष कादम्बरी' की माया बोस आधुनिक असुरक्षित होकर भी अपने देह को सजा-धजाकर अम्मीर जादा लडकों-पुरूषों की गाडियों में या होटल के कमरों में उन्हें रूपयों के अनुपात में मजा या सुख देती है। ''अलबत्ता गेहूँऐ रंग को गहरे रंग की गाढी लिपस्टिक से चमकाती, कटे बाल और कान की बडी-बडी बालियों से फैशनेबल दिखने में प्राय: कामयाब होती, उन लोगों से कितनी ज्यादा टिप-टॉप।''[2]

आज आधुनिक नारी अपने देह को भी बेचकर अपना रहने का इंतजाम कर रही है। आधुनिक नारी और पारंपारिक नारी में कितना फर्क है। इन औरतों की गली, संस्कृति ही अलग होती है। ऐसी नारियाँ सभ्य के बीच में रहकर अपनी देह की सप्लाई करती रहती है।

वस्तुत: आधुनिक नारी रहन-सहन के फलस्वरूप व्यवस्था की उपज है, जो स्वार्थांध से पतन के गर्त में खुद भी गिरती है और औरों को भी धकेल देती है।

निष्कर्ष :-

1. अलका जी साठोत्तरी लेखिकाओं में सर्वश्रेष्ठ लेखिका मानी जाती है। इनके साथ और भी महिलाओं ने अपनी कृतियों के द्वारा लेखनकार्य में विशेष स्थान पाया है। उसमें निरूपमा सेवती, कृष्णा सोबती, शशिप्रभा शास्त्री, मंजुल भगत, मन्नू भंडारी, मैत्रेयी पुष्पा आदि लेखिकाएँ हैं। इन्होंने अपने उपन्यासों में अधिकतर नारी को सामने रखकर उसके विचार, समस्या, स्थान को परिलक्षित किया है। नारी समाज में जब व्यवहार करती है तो उसे किस तरह समाज का सामना करना पडता है। इसका उल्लेख शशिप्रभा ने अपने 'नार्वे' उपन्यास में मालती द्वारा प्रस्तुत किया है। समाज व्यक्ति के लिए है, व्यक्ति से श्रेष्ठ है, इस समाज

---

1. **अलका सरावगी - कलिकथा : वाया बाइपास, पृ. 203.**
2. **अलका सरावगी - शेष कादम्बरी, पृ. 60.**

में रहना है तो उसके नियमों का पालन करना ही होगा, कायदे-कानून को अपनाना होगा तभी हम समाज में जीवन व्यतीत कर सकते है। निरूपमा सेवती ने 'दहकन के पार' में इसी समाज की बात की है। समाज में रहने के लिए या समस्या सुलझाने के लिए उन्हीं नियमों का पालन करना होगा जो समाज में स्थित है।

2. आज की महिला लेखिकाओं ने राजनीतिक, धार्मिक और वैज्ञानिक विचारों को भी अपने उपन्यासों का विषय बनाया है। राजनीति में स्वतंत्रता के पहले की और बाद की स्थिति को चित्रित किया है। उसी प्रकार किस तरह राजनेता अपने स्वार्थ के लिए कोई भी कदम उठाने के लिए तैयार होते है, इसका भी वर्णन भावुकता से किया है। इसकी साक्ष निरूपमा सेवती ने अपने 'दहकन के पार' में दी है। धार्मिक और वैज्ञानिक विचारों में लेखिकाओं के धर्म के नाम पर हो रही भ्रांत धारणाएँ, अंधश्रद्धाएँ आदि से समाज मुक्त नहीं हो सकता है। इसका ज्यादा फैलाव ग्राम्य समाज में हो रहा है। कृष्णा सोबती ने 'डार से बिछुडी' इस उपन्यास में माशों पात्र के माध्यम से इसका चित्रण किया है।

3. साठोत्तरी उपन्यासों में महिला लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों द्वारा व्यक्तिवादी चिंतन, महानगर बोध, आधुनिक बोध, नारी जागरण, वैज्ञानिक और औद्योगिक प्रगति, आत्म निर्वासन, अजनबीपन, अकेलापन, स्त्री-पुरूष संबंधों की नयी व्याख्या आदि के द्वारा नया बोध देनी की कोशिश की है। व्यक्तिवादी चिंतन में लेखिकाओं ने मनुष्य की स्वार्थी या मूल्य स्वभाव को पहचानकर और उससे व्यक्ति की नियति पहचानना यह लक्ष्य है। महानगर बोध में नगरों की बढ़ती हुई जनसंख्या और गंदगी जैसे मनुष्य समस्याओं को लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों में लक्ष्य बनाया है। आधुनिक बोध में नारी जागरण को महत्त्व दिया गया है। उपन्यासों में आधुनिकता की चुनौती को विभिन्न स्तरों पर स्वीकारने का प्रयास किया है। निर्मल वर्मा का 'वे दिन' उपन्यास इसकी साक्ष्य है। इसी तरह वैज्ञानिकता के कारण मनुष्यता में अपनापन एवं लगाव नष्ट होकर एक यंत्रवत्ता दिखायी दे रही है और मनुष्य एक दूसरे से अजनबी हो रहा है। अकेलापन मनुष्य की बहुत बडी समस्या बन रहा है। आज के उपन्यास पर विज्ञान का भरपूर प्रभाव पडा दिखायी देता है। साहित्यकार पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण कर उस तरफ खींचता चला जा रहा है।

4. अलका जी अपने साहित्य के साथ साथ इन लेखिकाओं से अलग दिखायी देती है। उनके आलोच्य उपन्यासों में उन्होंने उपर्युक्त विषय भी चित्रित किए है, लेकिन उनमें एक अलगता दिखायी देती है। उनके उपन्यासों में मारवाडी समाज तथा कोलकाता शहर का प्रभाव दिखायी देता है। अलका जी ने अपने उपन्यासों में नारी का सामाजिक जीवन, पारिवारिक जीवन, दांपत्य जीवन, स्वतंत्रता की सीमाओं को तोडनेवाली नारी, रहन-सहन आदि जीवन पद्धतियों का विश्लेषण किया है। अलकाजी के नारी का जीवन बहुत समस्याओं से घिरा हुआ है। उसमें पारिवारिक दृष्टि से नारी हर वक्त पिसती जा रही है। परिवार में उसे हर कठिनाइयों का सामना करना पड रहा है। वैवाहिक जीवन में नारी को अपने पति द्वारा, बच्चों द्वारा पूरा साथ नहीं मिल पाता। इसलिए वह अकेलापन महसूस कर रही है। दूसरी तरफ स्वतंत्रता की सीमाओं को भी वह लाँघने की कोशिश करती है। 'शेष कादम्बरी' की कादम्बरी विदेश में रहकर टी. वी. अखबार में काम करती है और अपने साथी का चुनाव अकेली करती है।

उपर्युक्त निष्कर्षों से यह पता चलता है कि महिला उपन्यासकारों के लेखन के जरिए यह पता चला है कि उन्होंने नारी को मुख्य मानकर लेख न किया है। अलका सरावगी के विवेच्य उपन्यासों में चित्रित पात्र एवं भाषा शैली के अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि वह हिंदी के अन्य महिला रचनाकारों से कहीं पृथक् मौलिक रचना धर्मी कथाकार के रूप में उभर रही है।

-----x-----